NEHRU BAL PUSTAKALAYA

अमर ज्योति

गोपीनाथ तलवलकर



नेहरु बाल पुस्तकालय

अमर ज्योति

गोपीनाथ तलवलकर

चित्रकार

जोमराज

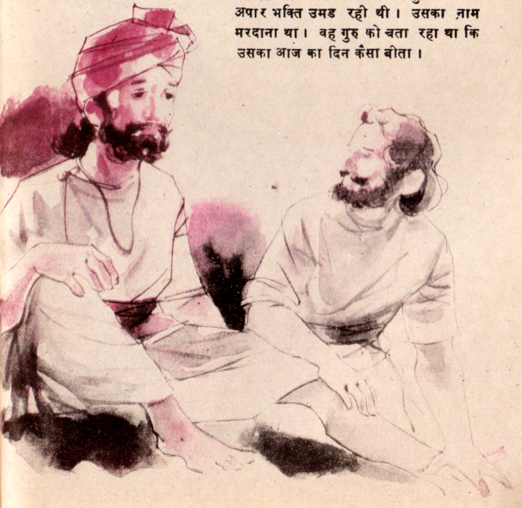
नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

प्रथम संस्करण 1977 (शक 1898)
दूसरी आवृत्ति 1990 (शक 1912)

Some Indian Saints (Hindi)
रु. 6.00
निदेशक : **नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, ए-5 ग्रीन पार्क,
नई दिल्ली-110 016 द्वारा प्रकाशित।**

नानक

पंजाब के एक छोटे-से गाँव में दो आदमी बैठे बातचीत कर रहे थे। उनमें से एक गुरु जान पड़ता था। गुरु रोबीला और तेजस्वी था। लगता था मानो उसके चेहरे के चारों ओर प्रभामंडल है। दूसरा भी अच्छा, तगड़ा व्यक्ति था। उसकी आँखों में गुरु के प्रति अपार भक्ति उमड रही थी। उसका नाम मरदाना था। वह गुरु को बता रहा था कि उसका आज का दिन कैसा बीता।



उसने कहा, "गुरुजी, अतिथियों का इतना ज्यादा सत्कार करनेवाला गाँव तो मैंने आज तक नहीं देखा। हर द्वार पर हमारा स्वागत किया गया, बढ़िया से बढ़िया चीजें दान में दी गयीं—आटा, दूध, कपड़े ..।"

अपनी दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए गुरुजी ने मुस्करा कर कहा, "मरदाना बेटे, भगवान से मेरी विनती है कि यह गाँव बर्बाद हो जाय।"

मरदाना के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। वह चीख उठा, "इतने अच्छे लोगों के लिए ऐसा क्यों कह रहे हैं, गुरुजी? आपकी बात तो



मेरे जैसे साधारण लोगों की समझ के परे है। पिछले गाँव में सब ने हमारा मजाक बनाया था, निरादर किया था, और उस गाँव को आपने आशीर्वाद दिया था कि खूब फले-फूले। ऐसा क्यों, गुरुजी?"

गुरुजी ने मुस्करा कर कहा, "जिस गाँव में इतने दुष्ट और अधर्मी लोग हों उसका खुशहाल रहना ही ठीक है ताकि वहाँ के लोग वहीं बने रहें। बाहर जाकर अपनी दुष्टता न फैलायें, दूसरों को न बिगाड़ें। उनका अधर्म, उनकी कंजूसी और उनकी बुरी नीयत उस गाँव की सीमा के अंदर ही रहे। अब इस गाँव को लो। यहाँ के लोग भले हैं, धर्मपरायण हैं, अतिथि-पाहुनों का स्वागत-सत्कार करते हैं। अगर यह गाँव बर्बाद हो जायेगा तो यहाँ के लोग बाहर जायेंगे, दूसरे गाँवों में जाकर बसेंगे और दूसरों को अच्छी बातें सिखायेंगे। इस प्रकार दूसरे लोग भी अच्छे बनेंगे, चारों ओर सुख और आनंद फैलायेंगे।"

गुरुजी का उत्तर सुनकर मरदाना प्रसन्न हुआ। आज उसने फिर जाना कि गुरु के कथन में कितना ज्ञान और सत्य होता है।



उसका मन श्रद्धा से भर उठा।

गुरु नानक सिख धर्म के प्रवर्त्तक थे। मरदाना उनका शिष्य था जो दिन-रात उनकी सेवा में लगा रहता था।

पंद्रहवीं शताब्दी में पंजाब की दशा बुरी थी। दुनिया में यह बात दूर-दूर तक फैल गयी थी कि भारत में बहुत दौलत है। खैबर दर्रे से होकर विदेशी लोग यहाँ की दौलत लूटने के लिए आक्रमण करने लगे। जो कुछ हाथ लगता उसे लेकर चल देते। विदेशियों के हमलों का देश की जनता पर बड़ा खराब प्रभाव पड़ा। लोग धर्म-कर्म भूलने लगे। चारों तरफ अनाचार फैल गया। नानक का जन्म ऐसे ही बुरे समय में हुआ। उन्होंने एक नया धर्म चलाया और लोगों को जीवन का एक नया अर्थ समझाया। इस धर्म ने आगे चलकर देश पर बहुत गहरा और स्थायी प्रभाव डाला।

नानक का जन्म पजाब के तलवंडी नामक स्थान में 15 अप्रैल, 1469 को हुआ था। उनके पिता का नाम था कालू मेहता और माँ का तृप्ता।

नानक का जन्म जिस जगह हुआ था वह राजधानी से बहुत दूर थी—शहर के शोरगुल से दूर। वहाँ का सूबेदार राय बुलार था जो मुसलमान हो गया था। वह उदार और दयालु था। हिंदुओं का आदर करता था। नानक के पिता राय बुलार के अधीन काम करते थे।

क्षत्रियों के रिवाज के अनुसार नानक के यज्ञोपवीत का दिन तय किया गया। जनेऊ तैयार किया गया, लेकिन बालक नानक ने पंडित से बहस की। "मेरे गले में यह धागा क्यों बांध रहे हैं आप? इसमें कौन-सी खास बात है? यह खो भी सकता है और टूट भी सकता है। यह मैला भी हो सकता है और जल भी सकता है। गले में धागा पहनने से ज्यादा जरूरी है सच बोलना, दूसरों के प्रति प्रेम और दया का भाव रखना, बुरे विचारों पर विजय पाना।"

इतने छोटे-से बालक के मुंह से गहन ज्ञान की बातें सुन कर लोग चकित रह गये।

समय आया तो नानक को स्कूल भेजा गया। अरबी और फारसी



पढ़ने के लिए मौलवी के पास भी बिठाया गया। लेकिन नानक का ज्ञान गुरु से कहीं बढ़-चढ़ कर था।

नानक की सच्ची गुरु तो थी प्रकृति। कभी-कभी तो वह अकेले ही जंगलों में निकल जाते और वहाँ एकांत में बैठकर ध्यान करते। कभी-कभी तो वहाँ इतने मग्न हो जाते कि भगवान की स्तुति में गीत गाने लगते।

नानक को भैंसों को चराने का काम सौंपा गया। उनको यह काम बहुत ही अच्छा लगता था। वह भैंसों को छोड़ देते और स्वयं बैठकर ध्यान करते।

एक बार भैंसें किसी खेत में घुस गयीं और सारा खेत चर डाला। खेत के मालिक ने बड़ी मुश्किल से उन्हें खदेड़ भगाया और गुस्से से भरा उनके चरवाहे की खोज में निकला। उसने देखा कि चरवाहा आंखें मूंदे ध्यान में खोया बैठा है। उन्हें खींचकर वह राय बुलार के पास ले गया। जब इस घटना की खबर नानक के पिता मेहता कालू को मिली तो वह भी बहुत बिगड़े और राय बुलार से कहा कि नानक को कड़ी सजा दें।

राय बुलार जानता था कि नानक साधारण चरवाहा नहीं है। उसने अपने आदमियों को आज्ञा दी कि किसान का जितना भी नुकसान हुआ है उसे पूरा कर दिया जाय। लेकिन जब उसके आदमी खेत पर पहुंचे तो देखा कि खेत पहले की तरह ही लहलहा रहा है, रत्ती भर भी नुकसान नहीं हुआ है। राय बुलार को तथा दूसरों को विश्वास हो गया कि नानक में अवश्य कोई अलौकिक शक्ति है।

कुछ दिनों बाद नानक को बहिन-बहनोई के पास रहने सुलतानपुर भेज दिया गया। उनको अनाज के भंडार की देख-भाल का काम सौंपा गया। नानक बराबर गरीबों और भूखों को अनाज दान में दे दिया करते थे, फिर भी भंडार में अनाज ज्यों का त्यों रहता था।

समय आया तो नानक का विवाह कर दिया गया। उनके दो पुत्र हुए।

लेकिन घर में रहना नानक के भाग्य में नहीं लिखा था। उनका मन शांत नहीं था। उनको विश्वास था कि किसी खास काम को करने के

लिए उन्हें संसार में भेजा गया है। दूसरों की तरह केवल खाने-पीने, सोने और परिवार का पालन-पोषण करने के लिए उनका जन्म नहीं हुआ है। उन्हें ऐसा कोई काम करना है, जिससे दुनिया वालों को सही रास्ता मिले, ज्ञान का प्रकाश मिले। इस काम को पूरा किये बिना उनके मन में चैन नहीं था।

एक दिन वह स्नान करने नदी में उतरे और जल में ओझल हो गये। लोग समझे वह डूब गये हैं। बहुत ढूंढ़ने पर भी वह नहीं मिले। तीसरे दिन वह स्वयं जल से बाहर प्रगट हुए। लोगों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। उन्होंने प्रश्नों की झड़ी लगा दी, लेकिन नानक ने सिर्फ इतना ही कहा, "न कोई हिंदू है, न मुसलमान। सब ईश्वर की संतान हैं।" उसी समय उन्होंने हिंदुओं और मुसलमानों दोनों को सही रास्ते पर लाने का संकल्प कर लिया।

नानक को बड़ी चिंता थी। उनको लगता था कि सारी दुनिया गलत रास्ते पर जा रही है। भगवान को भूल गयी है, धर्म को भूल गयी है। बिना पाल की नाव की तरह समाज डांवाडोल हो रहा है। उसे ऐसे व्यक्ति की जरूरत है जो जीवन की तूफानी नदी को पार करा सके। नहीं तो नाव डूब जायेगी, इसमें संदेह नहीं। इसी प्रकार के विचार नानक के मन में उठते रहते थे। आखिर उन्होंने एक दिन मरदाना को साथ लिया और अपने विचारों का प्रचार करने के लिए भ्रमण पर निकल पड़े।

एक बार एक काजी ने नानक से नमाज़ में शरीक होने को कहा। वहाँ के नवाब भी मौजूद थे। नानक राजी हो गये और काज़ी तथा नवाब से कुछ दूर पर जाकर खड़े हो गये। जब नमाज़ खत्म हो गयी तो काज़ी ने नवाब से कहा, "देखा आपने इस काफिर को? यह नमाज़ में शरीक नहीं हुआ। दूर खड़ा देखता रहा। इसने इस्लाम का अपमान किया है। इसे सजा दीजिए।" नानक ने मुस्करा कर कहा, "काज़ी साहब, आप तो सिर्फ नमाज़ पढ़ने का दिखावा कर रहे थे। सच बताइए आप अपनी उस घोड़ी के बारे में नहीं सोच रहे थे जिसके अभी बच्चा हुआ है?" नवाब साहब का मन भी नमाज़ में नहीं था। वे सोच रहे थे कि उनके आदमी काबुल से



अभी तक वापस क्यों नहीं आये ? वे वहां घोड़ खरीदने गये थे। ऐसी प्रार्थना में मुझे ज़रा भी विश्वास नहीं है।'

काज़ी और नवाब साहब दोनों ही चकित रह गये। दोनों ही सोच रहे थे कि नानक ने उनके मन की बात कैसे जान ली ? काज़ी तो उनका चेला बन गया और उनके साथ यात्रा पर जाने को तैयार हो गया।

गरीब दुःखी लोगों के लिए नानक के मन में खास जगह थी। वे उनके नेता माने जाने लगे। एक बार भाई लालो नाम के एक बढ़ई ने अपनी झोंपड़ी में नानक को न्योता दिया। भाई लालो की रूखी-सूखी रोटी में नानक को पकवान का-सा मज़ा आया। संयोग की बात, उसी समय गाँव के चौधरी भागो ने भी नानक को न्योता भेजा। भागो अमीर आदमी था और उसका बड़ा रोब-दाब था। कोई उसका न्योता अस्वीकार



करे, यह बात सोची ही नहीं जा सकती थी। लेकिन नानक नहीं गये। भागो ने इसको अपना अपमान समझा और नाराज होकर बोला, "तुमने नीची जाति के बढ़ई के घर रूखी-सूखी रोटी खायी और मेरे जैसे बड़े आदमी के घर दावत खाना मंजूर नहीं किया।"

नानक ने उत्तर दिया, "इस गरीब की रोटी में दूध है और तुम्हारी रोटी में खून। इस रोटी को कमाने के लिए उसने कड़ी मेहनत की है, खून-पसीना एक किया है। तुम सैकड़ों गरीबों का खून चूस कर रोटी कमाते हो।" अपनी बात साबित करने के लिए नानक ने अमीर भागो की रोटी को निचोड़ा तो उसमें से खून की बूंदें टपकीं। लालो के घर से रोटी मंगाकर उसको निचोड़ा गया तो दूध की बूंदें निकलीं। अमीर भागो ने सिर झुका दिया।

ऐसी बहुत-सी कहानियाँ नानक के बारे में कही जाती हैं।

यों ही घूमते-फिरते नानक एक बार हरिद्वार पहुँचे। वहाँ उन्होंने देखा कि गंगा के किनारे लोग अपने पूर्वजों का श्राद्ध कर रहे हैं, पिंडदान कर रहे हैं। कुछ देर तो वे खड़े देखते रहे। फिर गंगा का पानी लेकर उल्टी दिशा में छिड़कने लगे। लोग हँसने लगे। नानक ने कहा, "इसमें हँसने की क्या बात है ? अगर आपका छिड़का हुआ पानी स्वर्ग में आपके पूर्वजों को मिल सकता है तो मेरा छिड़का हुआ पानी पंजाब में मेरे खेतों में क्यों नहीं पहुँचेगा ? वे तो कहीं ज्यादा पास हैं।"

इस प्रकार नानक लोगों को समझाया करते थे कि यह ढकोसले बेकार हैं।उन्हें सच्चे धर्म का अर्थ समझाने की कोशिश करते थे।

उन दिनों पंजाब में सज्जन नाम का एक मशहूर डाकू था। वह जितना बेरहम था, उतना ही चालाक भी।उसने हिंदुओं के देवी-देवताओं के अनेक मंदिर बनवाये और मुसलमानों के लिए मस्जिद। वह सोचता था, "इस प्रकार हिंदू और मुसलमान दोनों ही मेरा विश्वास करेंगे और मेरे घर आयेंगे। रात को जब वे सो रहे होंगे मैं उन्हें मार डालूंगा और उनका रुपया-पैसा सब हथिया लूंगा।"

एक बार नानक उधर से गुजर रहे थे। सज्जन ने उनको अपने घर निमंत्रित किया और उनके सामने तरह-तरह के पकवान परोसे। लेकिन मन ही मन वह सोच रहा था, "यह आदमी तो बहुत सुखी लगता है। अवश्य ही बहुत अमीर होगा। रात में इसका सारा धन लूटकर इसे मार डालूंगा। किसी को पता नहीं चलेगा।"

भोजन के बाद सज्जन ने नानक से विश्राम करने को कहा। नानक ने कहा, "पवित्र स्थानों में भी शिकारी पक्षी उड़ते रहते हैं। वे जीवों को खा जाते हैं।"

सज्जन नानक की बात का अर्थ समझ गया। वह जान गया कि नानक ने उसके मन की बात भाँप ली है। उसने सोचा, "मैं शिकारी पक्षी की तरह हूँ। मैं लोगों की जान ले लेता हूँ, नानक मेरी ही बात कह रहे हैं।"

नानक के चरणों पर गिरकर उसने क्षमा मांगी।

नानक ने कहा, "सज्जन, तुमको ईश्वर ही क्षमा कर सकता है और वह केवल उन्हीं को क्षमा करता है जो अपने पाप को स्वीकार करते हैं, और उसका प्रायश्चित करते हैं। सच बोलो, तुमने कितने लोगों को लूटा और मारा है?"

सज्जन ने शर्म से सिर झुका लिया। "मैंने सैंकड़ों मर्दों, औरतों और बच्चों को मारा है और लूटा है। भगवान से मुझे कैसे क्षमा मिल सकती है?"

"जो कुछ तुम्हारे पास है, सब गरीबों को दान कर दो", नानक ने कहा।

सज्जन ने वैसा ही किया। अपना सर्वस्व गरीबों को दान कर दिया और नानक का शिष्य बन गया। नानक ने उसकी जिंदगी बदल दी। हिंदुस्तान में सिखों का पहला मंदिर सज्जन डाकू ने ही उनके प्रति



अपनी कृतज्ञता के प्रतीक के रूप में बनवाया था।

और संतों की तरह नानक भी जात-पाँत के विरोधी थे। वे ढोंग और अंध-विश्वासों की खिल्ली ऊड़ाया करते थे। उनके धर्म में तीन मुख्य बातें थी— कर्तव्य का पालन, अपनी आत्मा के प्रति और दूसरों के प्रति आदर का भाव और भगवान की प्रार्थना।

नानक सारी उम्र झूठ और अंध-विश्वास के विरुद्ध लड़ते रहे। लोगों को धर्म का सही रास्ता बताते रहे, और गरीब दुखियों की मदद करते रहे।

सन् 1531 में, आश्विन मास में, घूमते-घामते वे करतारपुर पहुँचे। वहाँ नानक ने अपना काम-काज अपने विश्वासपात्र शिष्य अंगद को सौंप दिया।

सन् 1539 में विजयदशमी के दिन उन्होंने अपना शरीर त्याग दिया।



बसवेश्वर

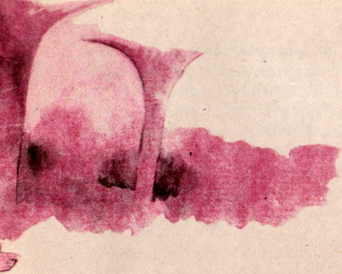
बारहवीं शताब्दी में कर्नाटक के बीजापुर जिले में बागेवाड़ी नामक एक गाँव था जिसमें मंदगेय मदिराजा नाम का एक ब्राह्मण रहता था। अन्य जातियों के अलावा ब्राह्मणों के पाँच सौ परिवार उस प्रदेश में रहते थे। यह गाँव एक अग्रहार था, यानी वह गाँव जो राजा द्वारा ब्राह्मणों को दान में दिया जाता है। इस कारण उस गाँव पर ब्राह्मणों का ही नियंत्रण था। मदिराजा बहुत ही रोबीले व्यक्तित्व का आदमी था और उसका गाँव में बहुत आदर था। उसकी पत्नी का नाम था मदाम्बे। यह ब्राह्मण दंपती बहुत ही धर्मपरायण और दयालु था। इतना रुपया-पैसे होने के बावजूद दोनों बहुत दुखी रहते थे, क्योंकि उनके कोई संतान नहीं थी।

ब्राह्मण-दंपती ने कई पंडितों से राय ली। पुत्र प्राप्ति के लिए उन्हें वृषभ-व्रत (शिव के वाहन नंदी की पूजा) करने के लिए कहा गया। मदाम्बे ने बड़ी श्रद्धा से पूजा की और मन ही मन निश्चय किया कि यदि पुत्र हुआ तो उसका नाम बासव रखूंगी। (कन्नड़ भाषा में बैल को बासव कहते हैं।)

व्रत का फल मिला। उनके घर में एक सुंदर और तेजस्वी पुत्र ने जन्म लिया। बालक के मुख पर अद्‌भुत तेज था।

बासव बहुत ही कुशाग्र-बुद्धि था। माँ-बाप तो उस पर जान देते थे





थे, सारे गाँव का वह लाडला था। उसके पिता की इच्छा थी कि वह खूब पढ़े और विद्वान बने। उसकी शिक्षा-दीक्षा का अच्छे से अच्छा प्रबंध किया गया। बासव इतना तेज था कि शीघ्र ही उसे वेद की अनेक ऋचाएं कंठस्थ हो गयीं।

बचपन से ही बासव को यह बुरा लगता था कि धर्मपरायण लोग और ब्राह्मण-पंडित जैसा कहते हैं, वैसा करते नहीं। उदाहरण के लिए, लोग नाग की पूजा करते थे, लेकिन जब घर में साँप निकल आता था तो उसे मार डालते थे। अग्नि की पूजा की जाती थी, लेकिन कहीं आग लग जाने पर लोग उसे बुझाने की हर संभव कोशिश करते थे। पशु-बलि के भी वह खिलाफ था। बलि के बकरे की चीख और तडप उससे सही नहीं जाती थी। इन सब बातों का बासव के मन पर गहरा असर पड़ा और कई विचार उसके मन में उठने लगे।

जब बासव आठ वर्ष का था तो एक दिन उसने देखा कि गाँव में

बड़ी धूम-धाम है। द्वार पर तोरण बांधे जा रहे हैं। औरतें चौक पूर रही हैं। शहनाई बज रही है। बढ़िया-बढ़िया कपड़े पहने स्त्री-पुरुष आ-जा रहे हैं। बासव ने अपने पिता से इस धूमधाम का कारण पूछा। उन्होंने हंसकर कहा, "अरे पगले, तेरा यज्ञोपवीत है और तुझे ही नहीं मालूम ?"

बासव ने पूछा, "यज्ञोपवीत क्या होता है, पिताजी ?"

पिता ने उत्तर दिया, "ब्राह्मण-क्षत्रियों के लड़के जब विद्योपार्जन के योग्य हो जाते हैं तो उनको यज्ञोपवीत पहनाया जाता है।"

बासव ने पूछा, "सिर्फ ब्राह्मण-क्षत्रिय ही क्यों पहनते हैं ? दूसरे क्यों नहीं पहनते ?"



पिता ने कहा, "नीची जातिवाले नहीं पहनते। बताया न, अब चलो।"

बासव ने कहा, "लेकिन जब मैं जन्म से ही ब्राह्मण हूं तो फिर इस बात को साबित करने के लिए यज्ञोपवीत की क्या जरूरत है?"

बासव के पिता ने बहुत समझाया लेकिन बासव ने साफ इंकार कर दिया। बोला, "यज्ञोपवीत की रस्म जाति-भेद को बढ़ानेवाली है। मैं अपना यज्ञोपवीत नहीं कराऊंगा। आप लोगों ने जबरदस्ती की तो मैं घर छोड़ कर चला जाऊंगा।" जरा-से बालक के मुंह से ऐसी बात सुन कर लोग दंग रह गये।

मदिराजा संकट में पड़ गये। उन्होंने जिद पकड़ ली कि बासव का यज्ञोपवीत कराकर ही रहेंगे। यह सिर्फ संस्कार का ही सवाल नहीं था, परिवार में उनकी अपनी प्रतिष्ठा का सवाल भी था। उन्होंने गांव के ब्राह्मणों से कह कर बासव पर जोर डलवाया। मदाम्बे ने भी बहुत समझाया। आखिरकार बासव मान गये। बड़े बेमन से उन्होंने यज्ञोपवीत करवाया। उसके बाद उन्हें गुरू के पास बिठाया गया। मदिराजा और मदाम्बे ने चैन की सांस ली।

बासव वेद, व्याकरण, छंदशास्त्र, संगीत, साहित्य, दर्शनशास्त्र और अन्य विषय पढ़ने लगा। कुशाग्र बुद्धि तो था ही, जो सिखाया जाता, बड़ी जल्दी सीख लेता। लेकिन उसको इस बात से चिढ़ थी कि विद्यार्थियों को तोते की तरह सब कुछ रटा दिया जाता था, अर्थ समझें या न समझें। बासव को शिक्षा का यह ढंग जरा भी अच्छा नहीं लगता था।

बासव ज्यों-ज्यों बड़ा होता गया उसकी समझ में आता गया कि समाज में कितना अन्याय है, मनुष्य-मनुष्य के बीच कितना भेदभाव है। यज्ञोपवीत के समय ब्राह्मणों से जो मतभेद हो गया था वह दिन पर दिन बढ़ता गया। उनसे अब और सहन नहीं हो रहा था।

इसी बीच उनके माता-पिता की मृत्यु हो गयी। उसके बाद तो गाँव के लोग खुल्लमखुल्ला उनके खिलाफ हो गये। उन्होंने गाँव छोड़ देने का निश्चय किया। गाँव छोड़कर वह कूडलसंगमा नामक स्थान में चले गये

जहाँ मलप्रभा और कृष्णा नदियों का संगम है। यह स्थान भी बीजापुर जिले में है। दोनों नदियों के संगम पर एक मंदिर है जो संगमेश्वर का मंदिर कहलाता है। वह बासव के इष्टदेव थे। वह उस स्थान पर संगमेश्वर की सेवा में काफी समय तक रहे।

लेकिन जब बासव बड़े हुए तो उन्होंने देखा कि संगमेश्वर जैसे पवित्र स्थान में भी समाज भ्रष्ट है। यहाँ भी लोग बागेवाड़ी से कुछ भिन्न नहीं थे। फिर भी वह सोचते थे कि यहाँ उन्हें आत्मिक ज्ञान की प्राप्ति होगी।

उनका मन उन्हें प्रेरित करता था कि बाहर के विशाल संसार को अपना कार्यक्षेत्र बनाओ और मानव जाति के कल्याण के लिए काम करो। उन्होंने सोचा कि अपने विचारों और आदर्शों का प्रचार करने के लिए तो



उन्हें नौकरी करके धन जुटाना होगा और निष्ठावान उत्साही लोगों को खोज निकालना होगा।

बासव गणित में तेज थे। वह सोचने लगे कि राजा बिज्जल के खजाने में ही क्यों न नौकरी तलाश की जाये। कहते हैं कि वह राजा के कोषागार में गये और प्रधान अधिकारी की प्रतीक्षा करने लगे। इतने में ही खजाने के प्रधान अधिकारी सिद्धदंडनाथ आये और लेखा-जोखा देखने लगे। पास ही खड़े बासव उनके बही-खाते की ओर बड़े ध्यान से देख रहे थे। उन्होंने फौरन एक गलती पकड़ी जिसके कारण बहुत बड़ा नुकसान हो सकता था। उन्होंने जब गलती बतायी तो सिद्धदंडनाथ खुशी से उछल पड़े और तुरंत बासव को राजा बिज्जल के पास ले गये। उन्होंने राजा से कहा कि कोषागार में काम करने के लिए इससे योग्य व्यक्ति दूसरा नहीं मिल सकता। बस, बासव को नौकरी मिल गयी। कहते हैं कि सिद्धदंडनाथ और बासव आपस में रिश्तेदार थे। बासव ने उनकी दोनों पुत्रियों गंगादेवी और मायादेवी से विवाह किये।



बासव स्वयं तो शैव थे लेकिन दूसरे मतवालों का आदर करते थे। सिद्धदंडनाथ के बाद बासव मुख्य कोषागार अधिकारी बने। काम के साथ-साथ वह अपने धर्म संबंधी काम भी करते थे। राजा बिज्जल को उन पर

पूरा विश्वास था। वह उनके धार्मिक कामों में बाधा नहीं डालते थे। कोषागार अधिकारी का पद संभालने के पहले ही बासव ने राजा से कह दिया था कि "मैं शिव का भक्त हूँ। सारे देश के शैव लोग मेरे पास आया करेंगे। मैं उनका हर तरह से आदर-सम्मान करूंगा। हो सकता है कुछ लोग मेरे खिलाफ आपके कान भरने की कोशिश करें और कहें कि मैं खजाने के रुपये उन पर खर्च करता हूं।" लेकिन राजा ने बासव से कहा कि मुझको आपके ऊपर पूरा भरोसा है। मैं किसी के कहने में नहीं आऊँगा।

बासव अपनी कमाई से वीरशैव मत के अपने अनुयायियों का पोषण करते थे। उनका घर उनके अनुयायियों से हमेशा भरा रहता था। मौके का लाभ उठाकर उनसे जलने वाले कुछ लोगों ने राजा से जाकर शिकायत की कि बासव खजाने का धन अपने मत के प्रचार में लगा रहे हैं। राजा ने जब जाँच करवायी तो पता चला कि खजाने में जितना रुपया होना चाहिए उससे ज्यादा ही है, कम नहीं।

बासव के उपदेशों से खिंचकर बहुत से लोग उनके अनुयायी बनने लगे। उनके सम्प्रदाय में शामिल होने के लिए जात-पांत किसी की बाधा नहीं थी। इस सिलसिले में एक किस्सा प्रचलित है।

बासव के भक्तों में एक ब्राह्मण था और एक अछूत। वे अपने बेटे और बेटी का विवाह कराना चाहते थे। बासव ने खुशी-खुशी उन्हें आशीर्वाद दिया क्योंकि दोनों एक ही मत को, वीर शैव मत को, मानने वाले थे। लेकिन लोग भला इस बात को कैसे सह सकते थे कि एक ब्राह्मण लड़का अछूत लड़की से विवाह करे। वे राजा के पास शिकायत लेकर गये। राजा ने तुरंत आज्ञा दी कि विवाह रोक दिया जाय। लेकिन उन्होंने राजा की आज्ञा की परवाह नहीं की, और विवाह सम्पन्न हो गया। राज्य-आज्ञा का उल्लंघन करने के कारण राजा ने उन दोनों की आँखें निकलवा लीं।

बासव अब बड़े धार्मिक नेता बन गये थे। उनके घर में धार्मिक मामलों पर चर्चा होती थी, प्रवचन होते थे। बड़ी संख्या में नर-नारी

उनके अनुयायी बन गये थे। उनकी लोकप्रियता और उनका प्रभाव उनके कुछ विरोधियों से सहा नहीं गया। उन्होंने बासव के खिलाफ राजा से शिकायतें की। उस समय बिज्जल और बासव के संबंध भी उतने अच्छे नहीं रह गये थे। बासव ने फैसला किया कि बिज्जल की नौकरी छोड़ देंगे और कुदालसंगम जाकर अपने धर्म का प्रचार करेंगे।

सन् 1167-68 में कुदालसंगम में ही उनकी मृत्यु हो गयी।

बसवेश्वर ने वीर शैवमत का प्रचार करने के साथ-साथ स्त्रियों की स्थिति में सुधार करने के लिए भी काफी काम किया। वह भक्ति मार्ग में विश्वास करते थे। वह कहते थे कि वीर शैवको न माँस खाना चाहिए न शराब पीनी चाहिए। आम जनता को अपनी बात समझाने के लिए उन्होंने और उनके कुछ भक्तों ने सरल कन्नड़ भाषा में पद रचना की। कहते हैं कि एक बार महात्मा गांधी ने बेलगाम में कांग्रेस की सभा में बोलते हुए कहा था कि वह भारत में जो कुछ करने का प्रयत्न कर रहे थे वह बसवेश्वर 12 वी शताब्दी में ही कर्नाटक में कर गये थे।



चक्रधर

चक्रधर स्वामी का जन्म तो हुआ था गुजरात में, लेकिन उन्होंने काम किया महाराष्ट्र में। उनका जन्म का नाम था हरपालदेव। भड़ौच नगर में उनका परिवार प्रसिद्ध हुआ। पिता राज परिवार के थे, घर धन-धान्य से भरा था।



जब हरपालदेव पच्चीस वर्ष के थे तो एक बार देवगिरि के राजा ने गुजरात पर हमला किया। हरपालदेव के शरीर में बल था, दिल में स्वाभिमान। उन्होंने बड़ी वीरता से शत्रु का मुकाबला किया और उन्हें वेरुल तक खदेड़ दिया। विजय तो मिली पर भयानक विपत्ति भी आ



पड़ी। हरपालदेव अचानक बीमार हो गये। उनको बचाने की हर संभव कोशिश की गयी, लेकिन वह न बच सके।

इसके बाद जो कहानी कही जाती है वह अद्भुत है। कहते हैं कि हरपालदेव के मृत शरीर को श्मशान ले जाया जा रहा था कि वे अचानक उठ बैठे मानों गहरी नींद से जागे हों। लोग आश्चर्य से हक्का-बक्का रह गये, डर भी गये। ऐसी अनहोनी घटना न किसी ने देखी, न सुनी थी। लोगों ने सोचा कोई भूत-प्रेत है। उसकी परीक्षा करने के लिए उससे तरह-तरह के सवाल पूछे जाने लगे। लेकिन उसने सब के सही उत्तर दिये और कुछ बातें तो ऐसी बतायीं जो हरपालदेव और उनकी पत्नी के अलावा और किसी को मालूम न थीं। लोग कहने लगे कि हरपालदेव फिर से जीवित हो उठे हैं। उनकी खुशी का ठिकाना न रहा।

हरपालदेव ही बाद में चक्रधर नाम से विख्यात हुए। चक्रधर का शुरु का जीवन साधारण ही था। भड़ौच के राजपरिवार का यह राजपुत्र बड़ी ही रंगीली तबियत का था। समय पर एक सुंदर स्त्री से उसका विवाह हुआ, और जीवन आमोद-प्रमोद में बीतने लगा। अमीर युवकों को गुमराह करनेवाले दोस्तों की कमी नहीं रहती। चक्रधर भी दोस्त कहलानेवाले ऐसे लोगों से घिरा रहता। जुआ खेलने की आदत भी पड़ गयी। धीरे-धीरे जुआ एक व्यसन बन गया और उसका सारा धन उसमें जाने लगा। जितना वह हारता उतने ही जोश से खेलता। उसको उम्मीद थी कभी-न-कभी किस्मत पलटेगी। कभी उसका भी दाँव लगेगा और खोयी हुई सारी दौलत फिर वापस आ जायेगी। लेकिन वह दिन कभी न आया।

जब पूंजी खत्म हो गयी तो कर्ज का सिलसिला शुरु हुआ। कर्ज का बोझ बढ़ता गया। कर्जदारों ने उसका जीना मुश्किल कर दिया। उसके पास अब कुछ नहीं बचा था। उसकी समझ में नहीं आता था कि करें तो क्या करें।



निराशा के इस अंधकार में आशा की एक ही किरण नजर आती थी—उसकी पत्नी। अभी तक उसको स्वप्न में भी इसका ख्याल नहीं था कि उसका पति जुए में सर्वस्व गँवा बैठा है। चक्रधर ने उसको कभी नहीं बताया था।

अब घर जाकर पत्नी को सब-कुछ बताने के अलावा कोई चारा नहीं था। उसको इसमें कोई संदेह नहीं था कि पत्नी को दुख चाहे जितना हो, वह उसे क्षमा कर देगी, और उसकी मदद करेगी।

लाचार होकर चक्रधर घर गया और पत्नी को सारी बात बता कर कहा, "इस संकट में केवल तुम मेरी मदद कर सकती हो। अपने गहने दे दो तो कर्ज चुकाकर अपनी जान बचाऊँ।"

उसकी बात सुनकर पत्नी ने कहा, "मुझको इसका जरा भी ज्ञान होता कि आप इस व्यसन में फँस गए हैं तो आपको मैं बचा लेती। लेकिन आपने मुझसे यह बात छिपा रखी। आप आज मेरे पास आये हैं जब सर्वनाश पूरा हो चुका। तो आप भी सुन लीजिए। गहने मेरे हैं। मेरे माँ-बाप ने मुझको दिये थे। उन्हें माँगने में भी आपको शर्म आनी चाहिए। मैं अपने गहने हर्गिज नहीं दूँगी।"

पत्नी की फटकार से चक्रधर की आँखें खुलीं। उन्होंने कभी नहीं सोचा था कि इस संकट के समय पत्नी उनको सहायता करने से इंकार कर देगी। उन्होंने सोचा कि संसार में सब नाते-रिश्ते झूठे हैं। सब का संबंध स्वार्थ से है। उसका मन विरक्त हो गया। उसी समय उसने घर त्यागने का निश्चय कर लिया।

चक्रधर तीर्थयात्रा पर निकल गये और घूमते-फिरते महाराष्ट्र के पूर्वी भाग में वर्वाड़ में पहुँचे। वहाँ उन्हें गोविंद प्रभु नामक संत मिले।

उन्होंने चक्रधर को बहुत प्रभावित किया। चक्रधर उनके शिष्य बन गये।

गुरु का आशीर्वाद लेकर तपस्या करने के लिए चक्रधर जंगल में चले गये। कहा जाता है कि उन्होंने सालबर्डी के जंगल में बारह वर्ष तक तपस्या की। यह कोई नहीं जानता कि उन दिनों वह कैसे रहते थे, और उनकी दिनचर्या क्या थी। बारह वर्ष गायब रहने के बाद वे वीरगल पहुंचे, इतना ही ज्ञात है।

कहा जाता है कि तपस्या पूरी हो गयी तो चक्रधर की भेंट उधली नाथ से हुई जो बड़े सिद्ध पुरुष कहे जाते हैं। उन्होंने चक्रधर को अपनी सारी विद्याएँ सिखानी चाहीं लेकिन उन्होंने देखा कि वह इतने पहुँचे हुए हैं कि उनको सिखाने लायक कोई विद्या उनके पास नहीं है। चक्रधर रूपवान थे। उनके रूप से प्रभावित होकर उधलीनाथ ने उन्हें 'वपस्थ-मिनी' विद्या दी। विश्वास था कि इससे मनुष्य कभी बूढ़ा नहीं होता। कहते हैं कि चक्रधर भी अंत तक युवा रहे।

चक्रधर कहते थे कि ईश्वर को पाना है तो सांसारिक सुखों को त्याग कर सन्यासियों की तरह रहना होगा। उन्होंने महानुभाव पंथ चलाया और बहुत से लोग उनके शिष्य बन गये।

उस जमाने में धर्म और ज्ञान का ठेका ब्राह्मण आदि उच्च वर्ग के लोगों के हाथों में था। आम जनता संस्कृत के ज्ञान से वंचित थी। घमंडी उच्चवर्गीय समाज ज्ञान के जो दो-चार रूखे-सूखे टुकड़े फेंकता था, उसी पर उन्हें संतोष कर लेना पड़ता था। चक्रधर ने इस अन्याय का विरोध किया। उन्होंने अपने सारे उपदेश आम लोगों की भाषा मराठी में दिये ताकि सब लोग उन्हें समझ सकें। उनकी रचनाओं के कारण मराठी भाषा को एक नयी प्रतिष्ठा मिली। इस कारण यद्यपि उच्च वर्ग के लोगों ने उन्हें बहुत सताया, फिर भी हजारों लोग उनके द्वारा चलायें गये महानुभाव पंथ में

शामिल हो गये।

लोगों को उपदेश देते हुए चक्रधर स्वामी भ्रमण करने लगे। धीरे-धीरे उनके इर्द-गिर्द उनको मानने वाले लोगों की भीड़ बढ़ती गयी। महानुभाव पंथ बढ़ता चला गया।

लेकिन जैसा कि हमेशा होता है, जैसे-जैसे चक्रधर स्वामी लोकप्रिय और प्रसिद्ध होने लगे उनके विरोधियों और शत्रुओं की संख्या भी बढ़ने लगी। लेकिन वह अपने शत्रुओं का कभी बुरा नहीं चाहते थे। वह स्वयं अहिंसावादी थे। शरीर से तो दूर, मन से भी हिंसा न करने का उनका संकल्प था। एक बार किसी ने धोखे से उन्हें विष दे दिया। उन्होंने चुपचाप उसकी यातना सह ली, विष देनेवाले को बुरा नहीं कहा।

चक्रधर स्वामी को कितनी ही पुरानी बातें नापसंद थीं। यह देखते हुए कि उस जमाने में लोग इतने अधिक रूढ़िवादी और अंधविश्वासी थे, उनका विरोध करने के लिए बड़े साहस की जरूरत थी। चक्रधर जातिभेद के खिलाफ थे। यज्ञ आदि पर भी उनको विश्वास नहीं था। मुक्ति के लिए तीर्थयात्रा करना वह आवश्यक नहीं समझते थे। वह कहते थे कि भगवान तो सभी जगह है। तीर्थयात्रा किये बगैर किसी की मुक्ति नहीं हो सकती, इस बात को वह नहीं मानते थे।

कहते हैं कि काकोस नाम का उनका एक शिष्य था। कुछ लोग जब तीर्थयात्रा पर चल पड़े तो उसकी भी इच्छा हो आयी कि उन लोगों के साथ द्वारका की यात्रा करे। चक्रधर स्वामी ने उसे बहुत समझाया कि अपना शरीर ही भगवान का मंदिर है। भगवान के दर्शन के लिए दूसरी जगह जाने की क्या जरूरत है? पर काकोस में इतनी समझ कहाँ? उसने ज़िद पकड़ ली। तब चक्रधर स्वामी ने उसे सबक सिखाया। शिष्य जब आँखें मूँदे ध्यान में रत बैठा हुआ था तब उसे अपने सामने द्वारका

नगरी दिखायी देने लगी। उसने देखा कि राजदूत उसे बड़े भारी राजमहल में ले जा रहे हैं। अंदर जाकर देखा कि साक्षात प्रभु सामने बैठे हुए है। उसके आनंद की सीमा न रही। धीरे-धीरे श्रीकृष्ण भगवान के स्थान पर स्वयं चक्रधर स्वामी दिखायी देने लगे। तब उसकी समझ में आया कि परमात्मा तो मेरे पास ही है। गुरू की मूर्ति ही परमेश्वर की मूर्ति है। व्यर्थ में तीर्थयात्रा करके देह को तकलीफ देने की क्या जरूरत है?

इस प्रकार चक्रधर स्वामी लोगों को धर्म का सही मतलब समझाया करते थे। सिर्फ कर्म-कांड ही धर्म नहीं है, यह उन्होंने अपने उपदेश से और आचरण से अच्छी तरह समझा दिया। सुधार की इन बातों से रूढ़िवादी लोग चिढ़ते थे। धीरे-धीरे वे चक्रधर स्वामी के इतने विरोधी हो गये कि उन्होंने राजा के भी कान भर दिये। अब चक्रधर स्वामी को सताने की साजिश में राजसत्ता भी शामिल हो गयी।



कहा जाता है कि मुधादित्य के मंदिर में सारे ब्राह्मण पंडित इकट्ठे हुए। उन्होंने चक्रधर स्वामी को बुलाकर सफाई माँगी। वह तो सिर्फ एक बहाना था। उन लोगों में कितने ही दुष्ट थे। वे लोग भला एक पवित्र संत का क्या न्याय करते? पूछताछ का नाटक करके चक्रधर स्वामी के नाक-कान काटने की सजा दी गयी। तुरंत वैसा किया गया।

चक्रधर स्वामी तीन दिन तक एकांत में बंद रहे। चौथे दिन वे कुटिया से बाहर आये, लेकिन कैसा चमत्कार! उनका चेहरा पहले की तरह सुंदर हो गया था। नाक-कान काटने के चिन्ह भी नहीं थे। उनके शिष्य फूले न समाये। हजारों लोगों की भीड़ जय-जयकार कर उठी।

जिसके नाक-कान कटवाये गये थे वह विद्रोही फिर जैसा का तैसा हो गया है यह खबर पाकर उनके विरोधी लोग जलभुन गये। उन्होंने सोचा अब राजा से सजा दिलवा कर ही इसे खत्म किया जाये। उन्होंने इस मुसीबत को जड़ से दूर करने का संकल्प किया।





चक्रधर स्वामी को उनके मठ से बाहर घसीटा गया। उनके शिष्य नागदेव ने उन्हें बचाने की कोशिश की तो सिपाहियों ने उसे डंडों से पीटकर दूर भगा दिया। पल भर की देर किये बिना उस महान दयामूर्ति चक्रधर स्वामी का सिर काट दिया गया। नदी का किनारा था। एक बैरागी उस कटी हुई देह की ओर देख रहा था। सहसा एक और चमत्कार हुआ। सिर धीरे-धीरे हिलने लगा। चक्रधर जीवित हो उठे। लेकिन उन्हें वहाँ और रहना स्वीकार न था। उन्होंने लोगों को ज्ञान का प्रकाश देने का प्रयत्न किया, लेकिन लोगों को अंधकार में रहना ही प्रिय था। सत्य और ज्ञान के भी कितने शत्रु हो सकते हैं!

चक्रधर स्वामी हिमालय की ओर चले गये। ऐसा कहा जाता है कि जग को दुख और करुणा से देखते हुए, और पाप-ताप नष्ट करते हुए, वे अभी तक वहाँ हैं। उन्हें तेरहवीं शताब्दी का गाँधी कहा जा सकता है। गुजरात में जन्मे, महाराष्ट्र में काम किया, अहिंसा का प्रचार किया और अंत में गाँधी जी की तरह ही उनकी भी हत्या क्रांति के विरोधियों द्वारा की गयी।

एकनाथ

एकनाथ के घर के सारे काम-काज माधव करता है—चंदन घिसता है, गंगा से घड़े भर-भरकर पानी लाता है।

ये शब्द एक प्रसिद्ध पद के हैं।

एकनाथ, जिसके घर में, इस गीत के अनुसार, स्वयं माधव, यानी भगवान ये सारे काम करते हैं, 1528 में पैठन में जन्मे थे। वह संत भानुदास के पोते थे। विट्ठल की मूर्ति को उठाकर कर्नाटक ले जाया गया था। भानुदास अपने तप के बल से उसे पंढरपुर वापस ले आये थे। उन्हीं के पोते थे एकनाथ। एकनाथ का घर का नाम था 'एक्या', जिसका अर्थ है, 'एक'। भानुदास के परिवार में वह अकेले ही लड़के थे।

बचपन से ही एकनाथ बहुत कुशाग्रबुद्धि थे। उन्होंने बड़ी ही जल्दी संस्कृत के श्लोक और पूजा के मंत्र आदि सीख लिये। वह छः ही साल के थे तो उनका यज्ञोपवीत कर दिया गया। बचपन से ही एकनाथ भगवान के भक्त थे। छोटे-छोटे गोल कंकड़ों को ही हरि की मूर्ति मानकर वे फूलों से उनकी पूजा किया करते थे। रसोई से कड़छी उठा लेते और उसे कंधे पर लिये घूमते। कहते यह मेरी वीणा है। तोतली भाषा में पद गाते। कहीं कोई भजन-कीर्तन सुन लेते तो उसकी हू-ब-हू नकल उतार लेते। कपडों के छोटे-छोटे टुकड़ों की झंडी बनाकर कंधे पर तान लेते और कहते मैं पढरपुर जा रहा हूँ। बालक एकनाथ के ऐसे ही असाधारण खेल थे।

उनके लक्षण देखकर एकनाथ के पिता ने उन्हें किसी बड़े गुरु के पास शिक्षा के लिए भेजने का फैसला किया। भाग्य से जैसा गुरु वह चाहते थे, जल्दी ही मिल गया। गुरु का नाम था जनार्दन स्वामी।

जनार्दन स्वामी चालीसगाँव के देशपांडे परिवार के थे। वह एक कुशल राजनीतिज्ञ थे। बाद में वह दौलताबाद में सरकारी कर्मचारी नियुक्त हुए। बेहद धर्मपरायण होने के बावजूद वह बड़ी लगन से अपना काम करते थे और घर में भी अपने कर्तव्यों का पालन करते थे। घर में एक खास जगह थी जहाँ बैठकर वह

काम करते थे और घर में भी अपने कर्तव्यों का पालन करते थे। घर में एक खास जगह थी जहाँ बैठकर वह ध्यान किया करते थे। वहाँ जाने की अनुमति किसी को नहीं थी।

एकनाथ जब जनार्दन स्वामी के पास गये तो उन्होंने फौरन जान लिया कि यह बालक असाधारण व्यक्ति होगा। उन्होंने आशीर्वाद देकर अपना शिष्य बना लिया और बड़े मन से उसको पढ़ाने लगे। वह अपना सारा ज्ञान एकनाथ को दे देना चाहते थे। एकनाथ भी बड़ी श्रद्धा से गुरू की सेवा करने लगे।

एक दिन आधी रात को गुरूदेव की आँख खुली तो क्या देखते हैं कि एकनाथ परेशान-से कुछ ढूँढ़ रहे हैं। हिसाब की सारी बहियाँ उनके सामने खुली रखी थीं। अचानक वह मुस्करा कर तालियाँ बजाने लगे। गुरू ने पूछा, "क्या बात है एकनाथ? आधी रात को यह क्या कर रहे हो? सोये क्यों



नहीं ?" एकनाथ ने उत्तर दिया, "गुरुदेव, एक पाई का हिसाब नहीं मिल रहा था, इसी से परेशान था। इतनी देर के बाद अब जाकर मुझको पता चल गया कि गलती कहाँ पर थी। इसलिए मैं प्रसन्न हो रहा था।"

जनार्दन स्वामी ने मुस्कराकर कहा, "इतनी लगन से भगवान का ध्यान करो तो ऐसा आनंद मिलेगा जिसके सामने यह आनंद बहुत ही छोटा है।"

जब एकनाथ की शिक्षा हर तरह से पूरी हो गयी तो जनार्दन स्वामी ने उन्हें श्री दत्तप्रभु (ब्रह्मा, विष्णु, महेश की त्रिमूर्ति) के दर्शन कराये। उन्होंने एकनाथ को सुलभ पर्वत पर सूर्यकुंड नामक तीर्थ स्थान जाने का आदेश दिया। उनसे कहा कि वहाँ जाकर तप करो। तप समाप्त होने पर तीर्थ यात्रा पर जाने की आज्ञा दी। जनार्दन स्वामी खुद उनके साथ नासिक त्र्यंबकेश्वर तक गये और उनको आशीर्वाद देकर वापस लौट गये।

गुरूदेव के आदेश के अनुसार सारे तीर्थ स्थानों के दर्शन कर एकनाथ अपने गाँव वापस आ गये।

लोग कहते हैं कि भक्त लोग अपने परिवार या अपने रोजगार को भुला देते हैं। लेकिन एकनाथ उन लोगों में नहीं थे। अपने परिवार को वह सुखी रखते थे। लोगों को धर्म की बातें समझाया करते थे और पुस्तकें लिखते थे। इस प्रकार उनका नाम दूर-दूर तक फैल गया।

एकनाथ शांति की मूर्ति थे। क्रोध पर तो उन्होंने पूरी तरह विजय पा ली थी। एक बार गंगा में स्नान के लिए गये। स्नान करके निकले ही थे कि एक आदमी ने उन पर थूक



दिया। उससे बिना कुछ कहे एकनाथ दुबारा स्नान करने चले गये। लेकिन जैसे ही वह बाहर निकले, उस आदमी ने फिर उनपर थूक दिया। एकनाथ फिर नहाने चले गये। इस तरह पूरे एक सौ आठ बार हुआ। एकनाथ को जरा भी क्रोध नहीं आया। अंत में वह आदमी एकनाथ के चरणों में गिर पड़ा और बोला, "प्रभु, बहुत महिमा सुनी थी आपकी। आज परख कर देख लिया। अब इन चरणों को छोड़ मैं नहीं जाऊंगा।"

एकनाथ जाति-भेद बिल्कुल नहीं मानते थे। एक बार एक सूखी-सी नदी के किनारे तपते हुए बालू पर एक अछूत बच्चा पड़ा रो रहा था। एकनाथ ने उसे तुरंत उठाकर उसके माँ-बाप को जाकर सौंप दिया। उस समय वह स्नान करने के बाद पवित्र रेशमी वस्त्र धारण करके ध्यान करने जा रहे थे।

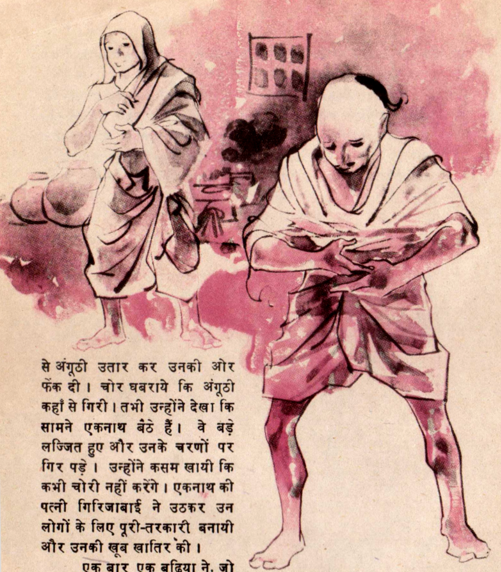
उसी गाँव में रानू नाम का एक भंगी रहता था। वह बहुत विनम्र और सदाचारी था। न वह कभी गाली-गलौज करता था, न शराब पीता था, न माँस खाता था। उसके बिरादरी के लोगों ने मजाक में उसका नाम 'रानू पंडित' रख छोड़ा था। रानू की बड़ी इच्छा थी कि एकनाथ एक बार उसके घर भोजन ग्रहण करें। एकनाथ मान गये। रानू की खुशी का ठिकाना न रहा। उस जमाने में एक ब्राह्मण का एक अछूत के घर खाने का निमंत्रण स्वीकार करना बहुत ही अनहोनी बात थी। ब्राह्मण लोग तो अछूत के साये से भी कतराते थे और यहाँ एकनाथ अछूत के घर खाने को तैयार हो गये।

भंगियों के मोहल्ले में खुशी छा गयी। हर एक ने अपनी-अपनी हैसियत के अनुसार अपने घर को सजाया। रानू ने तो अपने घर को ऐसे सजाया था मानो दीवाली का त्योहार हो। चारों ओर आम के पत्तों के तोरण और बाहर द्वार पर केले के स्तंभ बाँधे, आँगन को गोबर के पानी से लीप-पोत कर चौक पूरे। सड़क के दोनों ओर अछूत लोग कतार बाँध कर एकनाथ के स्वागत के लिए खड़े हो गये। जैसे ही एकनाथ आये लोगों ने उनकी जय-जयकार की। रानू ने बड़े भक्ति-भाव से भोजन परोसा। भोजन बिल्कुल सादा था, लेकिन एकनाथ को अमृत के समान लगा। रानू

और उसके भाई-बंधु इतने खुश थे मानों साक्षात् भगवान उनके घर पधारे हों। भंगियों की सारी बस्ती मानो स्वर्ग बन गई थी उस दिन।

एक बार एकनाथ के घर चोर घुसे। लोगों का ख्याल था कि एकनाथ खूब पैसेवाले हैं। चोर बड़ी-बड़ी उम्मीदें लेकर आये थे। जो कुछ जेवर आदि हाथ लगे उनकी पोटली बांधने लगे। इतने में एकनाथ और उनकी पत्नी की आँख खुल गई। एकनाथ ने चोरों को देख लिया। उन्होंने न शोर मचाया, न चोरों को खदेड़ने की कोशिश की। बल्कि अपनी उंगली





से अंगूठी उतार कर उनकी ओर फेंक दी। चोर घबराये कि अंगूठी कहाँ से गिरी। तभी उन्होंने देखा कि सामने एकनाथ बैठे हैं। वे बड़े लज्जित हुए और उनके चरणों पर गिर पड़े। उन्होंने कसम खायी कि कभी चोरी नहीं करेंगे। एकनाथ की पत्नी गिरिजाबाई ने उठकर उन लोगों के लिए पूरी-तरकारी बनायी और उनकी खूब खातिर की।

एक बार एक बुढ़िया ने, जो भीख माँग कर अपना पेट भरती थी,

लोगों से कहा कि उसकी बड़ी इच्छा है कि हजार ब्राह्मणों को अपने घर बुला कर जिमाये। इसे असंभव बात जानकर लोगों ने उसकी बात टाल दी। कुछ ने मजाक भी बनाया। एक ब्राह्मण ने राय दी, "किसी एक अच्छे ब्राह्मण को बुलाकर खिलाओ जो संत-स्वभाव हो और सच्चा भक्त हो। एक ऐसे सुपात्र को जिमाने से हजार ब्राह्मणों को जिमाने का फल प्राप्त होगा।"

बुढ़िया ने प्रसन्न होकर पूछा, "ऐसा ब्राह्मण मिलेगा कहाँ?"

ब्राह्मण ने उत्तर दिया, "तुम्हारे भाग्य से ऐसा सुपात्र गाँव में ही है—एकनाथ।"

बुढ़िया ने खुशी-खुशी जाकर एकनाथ को न्यौता दिया। बड़ी-बड़ी तैयारियाँ की उसने। कई दिन पहले से ही भाग-दौड़ करती रही। एकनाथ के पुत्र हरि पंडित बड़े ही कट्टर ब्राह्मण थे। उनको पिता का बुढ़िया के यहाँ जाना अच्छा नहीं लगा। वह पिता के पीछे-पीछे गये। एकनाथ ने बड़े आनंद से पेटभर भोजन किया। भोजन के बाद उन्होंने अपने पुत्र से जूठी पत्तल उठाने को कहा। लेकिन यह क्या? उस पत्तल के नीचे तो एक और जूठी पत्तल थी! हरि पंडित ने उसको उठाया तो उसके नीचे एक और पत्तल निकली। इस प्रकार पूरी एक हजार पत्तलें निकलीं। बुढ़िया तो आनंद से अवाक् रह गयी। हरि पंडित को बड़ा पछतावा हुआ। वह पिता के चरणों में गिर कर बोले, "आप ब्रह्म के अवतार हैं। मुझको क्षमा करें।" उस दिन से हरि पंडित बिल्कुल ही बदल गये। अब वह भी जात-पांत को नहीं





मानते थे और जीवमात्र का आदर करते थे।

एक बार हरि पंडित काशी से एक कलसा भर कर गंगाजल ले आये। वह उसे रामेश्वरम् ले जा रहे थे। काशी से गंगाजल ले जाकर रामेश्वरम् में छिड़कना बड़ा ही पुण्यकार्य माना जाता था। हरि पंडित रास्ते में पैठन में रुक गये। गांव के सभी लोग उनकी अगवानी करने के लिए इकट्ठे हो गये थे। एकनाथ भी थे। दोपहर का समय था और गर्मी बहुत सख्त थी। पास ही एक गधा खड़ा था। प्यास के मारे उसकी जान निकल रही थी। एकनाथ को बेचारे गधे पर दया आ गयी और उन्होंने

थोड़ा-सा गंगाजल लेकर उसके मुँह में डाल दिया। हरि पंडित को गुस्सा तो बहुत आया लेकिन पिता से कुछ कह भी नहीं सकते थे। पवित्र गंगाजल को गधे के मुह में डालकर घोर अधर्म किया था उनके पिता ने। यह तो गंगाजल का अपमान था। कितनी कठिन यात्रा करके वह गंगाजल लाये थे। बेचारे हरि पंडित रात भर सो नहीं सके। गंगाजल की ही बात सोचते रहे।

करवट बदलते-बदलते जब हरि पंडित को किसी तरह नींद आयी तो सपने में स्वयं रामेश्वर ने दर्शन दिये। वह कह रहे थे, "तुम मुझको हजार घड़े गंगाजल से स्नान करवाते तो भी तुमको इतना पुण्य न मिलता हरि पंडित, जितना एकनाथ के द्वारा प्यासे गधे को पानी पिलाने के कारण मिला है।"

एकनाथ को हर जीव, हर चीज में भगवान के दर्शन होते थे। मनुष्य-मनुष्य में तो क्या, वह तो मनुष्य और पशु में भी अंतर नहीं करते थे।

संत ज्ञानेश्वर की पुस्तक ज्ञानेश्वरी को एकनाथ ने आसान मराठी में लिखा। संत होने के अलावा एकनाथ बड़े लेखक भी थे। उन्होंने संस्कृत के महान ग्रंथों का सरल मराठी में अनुवाद किया ताकि साधारण लोग भी उन्हें पढ़ और समझ सकें। धार्मिक और सामाजिक सुधारों में उन्होंने जैसा साहस दिखाया वैसा ही लिखने में भी। इसी कारण वह सारे देश में प्रसिद्ध हो गये। एक गाँव, शहर या प्रांत के न रह कर वह सारे देश के हो गये। काशी में उनकी पुस्तकों को लेकर शानदार धार्मिक जुलूस निकाला गया। "भावार्थ रामायण" और "रुक्मिणी स्वयंवर" उनकी प्रसिद्ध पुस्तकें हैं। राम और कृष्ण इस देश के इष्टदेव हैं। वे सारी अच्छाईयों, सुंदरता, उदारता, वीरता आदि की मूर्ति माने जाते हैं। बाल्मीकि की रामायण के आधार पर राम की कहानी लिखने का पहला प्रयत्न एकनाथ ने ही किया था। उनके वर्णन इतने सुंदर हैं और शैली इतनी आकर्षक कि उनकी रचना बहुत जल्दी लोकप्रिय हो गयी। "रुक्मिणी स्वयंवर" से एकनाथ की कृष्णभक्ति का परिचय मिलता है।

संतों द्वारा लिखे साहित्य में एकनाथ के अभंगों या पदों का बहुत ऊँचा स्थान है। उनके गीत लोगों को रटे पड़े हैं। उनके उपदेश हर समय और हर जगह पर लागू हैं।

एकनाथ हिंदी में पद लिखते थे। वह उर्दू भी जानते थे।

एकनाथ का कहना था कि ईश्वर की भक्ति में स्वार्थ नहीं होना चाहिए। सीधे सच्चे मन से भगवान से भक्ति करनी चाहिए। घर-परिवार का काम करते हुये भी ईश्वर से लौ लगायी जा सकती है। इसके लिए घर-बार त्यागने की जरूरत नहीं। ध्यान करने के लिए जंगल में जाने की आवश्यकता नहीं। सबसे बड़ी बात यह है कि मनुष्य की उपेक्षा करने से ईश्वर प्रसन्न नहीं होता। मानव की सेवा ही ईश्वर की सेवा है।

एकनाथ के जीवन का अंत करीब था। वह "भावार्थ" रामायण के 44 अध्याय लिख चुके थे। उन्होंने जब अपने मित्रों और शिष्यों को बताया कि उनकी मृत्यु निकट है तो उन्हें बड़ा दुख हुआ। उन्होंने कहा "भावार्थ रामायण" को पूरा करके जाइए। एकनाथ ने कहा, यह काम गावबा पूरा करेगा।

गावबा का दिमाग पूरी तरह विकसित नहीं हुआ था। वह ठीक से बोल भी नहीं पाता था। वह एकनाथ के साथ रहता और पौराणिक कहानियाँ तथा भजन सुना करता। सारा वातावरण भक्तिमय था। गावबा धीरे-धीरे बोलने लगा। वह श्लोकों का पाठ करने लगा। साधु-संतों की संगत उनको अच्छी लगने लगी। एकनाथ की साधना से गावबा होशियार और योग्य आदमी बन गया। उसी ने "भावार्थ रामायण" के बाकी अध्याय लिखकर उसको पूरा किया।

माघ मास की षष्ठी को गोदावरी नदी के किनारे स्नान के लिए आये लोगों की भीड़ लगी थी। जगह-जगह भजन-कीर्तन हो रहे थे। विट्ठल का नाम हवा में गूंज रहा था। एकनाथ भीड़ की आँख बचाकर चुपचाप निकले और गोदावरी नदी में घुस कर अंतर्ध्यान हो गये। फिर उन्हें कभी किसी ने नहीं देखा। उनकी पुस्तकें, उनके रचे गीत और पद अमर हो गये, महाराष्ट्र में ही नहीं, देश भर में।

चंडीदास

लगभग 400 वर्ष पहले की बात है। बोलपुर से पूर्व में कुछ मील दूर नानुर नाम का एक गाँव है। इस गाँव में एक ब्राह्मण परिवार रहता था। ब्राह्मण बाशुली देवी के स्थान के पुरोहित थे। ब्राह्मण का ज्येष्ठ पुत्र चंडीदास सुंदर और फुर्तीला था। जो देखता, देखता ही रह जाता। पर वह न जाने कैसा था। हमेशा किसी ध्यान में लीन दिखायी देता। पढ़ाई में उसका बिल्कुल दिल नहीं लगता था। कई बार टोकने के बाद ब्राह्मण ने हार मान ली। किसी प्रकार पुत्र को शिक्षा के प्रति आकृष्ट नहीं करा पाये।

एक दिन गुस्से से उन्होंने ब्राह्मणी से कहा, "आज उसे खाना मत देना। थाली में राख डालकर देना।"

पर वह आखिर माँ जो ठहरी। बेटे को थाली में राख कैसे परोसती? थाली में चावल परोस दिये, एक कोने में चुटकी भर राख रख दी। इस प्रकार पति की बात भी रख ली।

चंडीदास ने खाना खाते समय पूछा, "यह राख क्यों रखी है?" तब ब्राह्मणी ने चंडीदास को उसके पिता के कठोर आदेश की बात बतायी। चंडीदास को बहुत दुख हुआ। उसे अन्न नहीं रुचा। गाँव के बाहर एक ओर बाशुली का स्थानक था। पास में अजय नदी बह रही थी।

चंडीदास दुखित मन से बाशुली के स्थानक में जा बैठा। चारों ओर सुनसान स्थानक की सांय-सांय ध्वनि, बकुल वृक्ष की काँपती हुई छाया। एक ओर कल-कल करती बह रही अजय नदी। नदी के जल में चंडीदास को अपने मन का क्रंदन सुनायी दिया। उसका मन उदास हो गया। उसने सोचा, "इस जीवन को किसलिए बचाया जाये?"

उस समय बाशुली देवी जाग्रत होकर चंडीदास के सम्मुख आयी और बोली, "चंडीदास तुम मरोगे नहीं, तुम तो महान कवि बनोगे, पंडित बनोगे। मानव-प्रेम के गीत गाओगे। तुम घर लौट जाओ।"

चंडीदास देवी का वरदान पाकर लौट गया। बाशुली देवी का स्थानक गांव से थोड़ा बाहर था। स्थानक से चंडीदास के घर जाने के लिए तालवन को पार करके जाना पड़ता था। तालवन के भीतर एक कुटिया थी। उस कुटिया के द्वार पर एक सुंदर लड़की खड़ी थी। चंडीदास ने अचानक लड़की को देखा तो ठगा-सा देखता रह गया उसे लगा कृष्ण की राधा भी ऐसी ही होगी।

पर वह लड़की एक धोबी की पुत्री थी। नाम था तारा। घर लौट कर चंडीदास ने अपनी पहली कविता तारा के नाम लिखी।

चंडीदास के बारे में ऐसी अनेक किंवदंतियां हैं। लेकिन पंडित समुदाय चंडीदास के जीवन एवं इन किंवदंतियों के बारे में एकमत नहीं हैं। कुछ लोग उन्हें बांकुरा छानना के निवासी मानते हैं। उनकी मृत्यु के बारे में भी अनेक कथाएँ हैं। सुना है, गौड़ के सुलतान ने उनको हाथी के पैर के नीचे कुचलवा डालने का आदेश दिया था। उनको जब हाथी के ऊपर से नीचे फेंका गया तब भी वे तारा या रामी का नाम लेकर गा रहे थे।

तारा धोबी की पुत्री थी। अछूत थी। उसके हाथ से पानी पीना भी वर्जित था। लेकिन चंडीदास के लिए उसकी न कोई जाति थी, न धर्म। वह थी शाश्वत शक्ति। जैसे राधा कृष्ण की शक्ति, वैसे ही।

श्री चैतन्य ने धोबी, मोची, पापी, चांडाल सभी को अपनी गोद में बिठाया था। उनके लिए ब्राह्मण और चांडाल के बीच कोई भेद नहीं था। उनका धर्म प्रेम का धर्म था। चंडीदास के काव्य-कीर्तन में भी मनुष्य के उस परस्पर प्रेम की बात ही है। केवल प्रेम से ही ईश्वर को वश में किया जा सकता है। ईश्वर और मनुष्य उस स्तर पर एक हो जाते हैं। भक्त कवि चंडीदास के पद फूल की तरह सुंदर और मधुर है। चैतन्य भी चंडीदास के काव्य और कीर्तन से मुग्ध हो गये थे।

बाद में अपने पिता की जगह चंडीदास बाशुली देवी के मंदिर में पुरोहित नियुक्त किये गये। प्राचीन बंगाल में कई जगह, खास करके बीरभूम प्रदेश में धर्मठाकुर और बाशुली देवी की पूजा प्रचलित थी। पंडित लोग मानते हैं कि धर्मठाकुर बाद में शिव के रूप में मनुष्यों द्वारा



पूजा पा रहे हैं। बाशुली देवी हुई विशालाक्षी देवी।

चंडीदास बाशुली देवी के मंदिर में पुरोहित हो गये पर केवल पूजा-अर्चना एवं फूल-पत्र में उनका मन नहीं लगा। वे भावविभोर होकर गीत रचते थे और मन ही मन गीत गाते रास्तों से गुजरते। नानुर के लोग सोचते कि चंडी ठाकुर पागल हो गये हैं।

धोबी की पुत्री तारा उस प्रथम दर्शन के दिन से चंडीदास को भूल नहीं पायी थी। चंडीदास नदी पर नहाने जाते तब तारा कपड़े धोना ही भूल जाती। चंडीदास का शरीर मानो आकाश की आभा था। तारा उसे एकटक देखती रहती थी। चंडीदास के गीतों में भी क्या माया थी, तारा को लगता जैसे लाखों युगों से उनका गीत सुनती आयी है।



बाशुली या चामुंडा भयंकरता की देवी है। उनका एक और नाम है तारा। कहानी में है कि वही धोबी की पुत्री के रूप में चंडीदास के पास आयी थी। उसका नाम रामी हो सकता है या रामतारा भी हो सकता है। रामी नाम अधिक प्रचलित है। रामी धोबिन के घाट की बात आज भी लोग करते हैं। लोग एक साथ रामी-चंडीदास का नाम लेते हैं। बिना रामी के चंडीदास की प्रीति मिथ्या, गीत मिथ्या। बिना छाया के क्या सूर्य होता है? बिना पार्वती के शिव या बिना राधा के कृष्ण तो हो ही नहीं सकते। जो भी हो, कहानी इस प्रकार है कि देवी बाशुली रामी या तारा बनकर चंडीदास के पास आयी थी उसके मुख से गीतों की रचना कराने।

"भ्रमिते-भ्रमिते नानुर ग्रामेते, प्रवेश जाइया करे"

(घूमते-घूमते उन्होंने नानुर गाँव में प्रवेश किया) बाशुली घूमते-घूमते नानुर गाँव में आयी। रामी और चंडीदास के सहज प्रेम में जाति-धर्म को स्थान नहीं मिला। चंडीदास बड़े ब्राह्मण।परिवार का पुत्र। एक धोबी की पुत्री के लिए पागल हो गया। पूजा-अर्चना सब कुछ छूट गया। चंडीदास केवल गीत रचते थे और कीर्तन करते थे। रामी भी उसके साथ गीत गाती थी और छाया की तरह उसके साथ-साथ घूमती थी।

समाज में काफी निंदा हुई। सभी ने छि: छि: किया। ब्राह्मण बोले, धर्म भ्रष्ट हो गया। उन दिनों देश में काफी तंत्रमंत्र चल रहे थे। बड़े-बड़े तांत्रिक नाराज हो गये। उन्होंने कई प्रकार के षड़यंत्र रचे।

एक रात को रामी के साथ चंडीदास के मिलने की बात थी। वर्षा शुरू हुई। चंडीदास ने जाकर देखा रामी नहीं आयी, कुछ देर प्रतीक्षा की। तब भी रामी नहीं आयी। उस समय बड़ी जोर से बारिश हो रही थी। चंडीदास रामी के घर गये। रामी एक स्त्री के साथ बातों में ऐसी खो गयी थी कि समय का ख्याल ही नहीं रही। उसके बाद बारिश होने लगी। चंडीदास से वादा करने पर भी रामी जा न सकी।

आँगन के एक कोने में पेड़ की आड़ में चंडीदास काफी देर तक खड़े रहे। घोर अंधकार! निरंतर बारिश। बाहर कुछ आवाज सुनकर रामी ने अपनी सखी को देखने के लिए भेजा। सखी कुछ देख न पायी।



तब रामी हाथ में दीया लेकर आयी। देखा, बाहर चंडीदास खड़े हैं और काँप रहे हैं। उसका सारा शरीर भीग गया है। रामी ने खूब डाँटा, "ऐसी बारिश में घर से निकलना चाहिए ?"

चंडीदास ने घर लौटकर अपना सुप्रसिद्ध गीत लिखा :

"ए घोर रजनी मेघघटा बंधु
केमने आइला बाटे
आंगिनारी कोने बंधुये तितिछे
देखिये परान घाटे"

(ओ बंधु, तुम ऐसी बादल छायी घोर रजनी में कैसे आये ? आँगन के कोने में बंधु भीग रहा है, उसे देखकर दिल घट रहा है।)

गाँव में इस कलंक की बात फैल गयी। काटवा से तारापीठ तक रामी-चंडीदास की बातों की चर्चा होने लगी, उनके गीतों की चर्चा होने लगी। गंगा के तट के प्रदेशों में उन दिनों वैष्णव साहित्य उभर रहा था। उस समय चंडीदास नये भाव से नये पदों की रचना करने लगे। बाउरी, भल्ला, बागदी, काड़ी, डोम सब चंडीदास-रामी के कीर्तन सुनने उमड़ पड़े।

किंतु चंडीदास के पिता का सुख-चैन लुट गया। खाना-सोना भूल गये। जमींदार ने देखा कि ऐसा ही चला तो समाज नहीं रहेगा। हिंदू ब्राह्मण और तांत्रिकों ने सोचा कि रामी और चंडीदास को अलग नहीं किया तो धर्म का नाश हो जायेगा। चंडीदास का एक भाई था नकुल। नवाब के दरबार में वह ऊंचे पद पर था। उसका मस्तक शर्म से झुक गया। समाज में बड़े-बड़े लोगों ने उसका जीना मुश्किल कर दिया।

इसी समय शोक और दुख से एक दिन चंडीदास के पिता की मृत्यु हो गयी। चंडीदास को काबू में लाने का अवसर मिल गया। ब्राह्मण बोले, "शवयात्रा में शमशान कोई नहीं जायेगा।" नकुल ने उनके पैर पकड़ कर उन्हें किसी प्रकार समझा लिया। ब्राह्मण बोले, "ठीक है, पर चंडीदास को प्रायश्चित करना ही पड़ेगा। नहीं तो हम में से कोई श्राद्ध में हिस्सा नहीं लेगा, तुम्हारे अन्न-जल को छुएँगे तक नही।"

चंडीदास क्या करते ? पिता का श्राद्ध नहीं होगा ? पर रामी अछूत



है, इसलिए प्रायश्चित करना होगा। उसे छोड़ना होगा। चंडीदास व्याकुल होकर रो-रोकर घूमने लगे। एक बार उन्होंने भाई नकुल के पैर पकड़ने का प्रयत्न किया। पर नकुल पैर छुड़ाकर चला गया।

आखिर चंडीदास ने प्रायश्चित करना स्वीकार किया। ऐसा न करते तो पिताजी की आत्मा को शांति नहीं मिलती। वे जानते थे कि रामी के प्रति अन्याय हो रहा है। इसीलिए उनके हृदय में बवंडर उठ रहा था।

ब्राह्मणों ने उन्हें स्नान कराके शुद्ध किया, होम के लिए अग्नि जलायी। उसी समय रामी दौड़कर आ पहुँची। आँसू से चेहरा भीग गया था। "चंडीठाकुर, तुम मेरे लिए प्रायश्चित कर रहे हो। तुम मुझे छोड़ दोगे?" उसने कातर होकर पूछा।

चंडीदास का मन डगमगा गया। उन्होंने सोचा, "धर्म क्या है? मनुष्य से घृणा करना, उसे नीचा मानना, छोटा मानना— इससे बड़ा अधर्म कोई नही। रामी के लिए यदि आज उन्हें प्रायश्चित करना पड़े तो उनकी कविता मिथ्या, मनुष्य का गीत गाना मिथ्या।"

उन्होंने ब्राह्मणों से कहा, "मुझे जाने दो।"

ब्राह्मणों ने रोका, इस समय बाहर शोरगुल हुआ। किसी ने बताया कि तालवन में रामी की कुटिया को आग लगा दी गई है।



चंडीदास को अब निर्णय करने में देर नहीं लगी। रामी का हाथ पकड़ कर वे निकल पड़े। राजुर के गणेश कीर्तनकार के घर जाकर दोनों ठहरे। उनके लिए जाति, धर्म, घर, समाज कुछ भी नहीं था। रात-दिन वे कीर्तन में मस्त रहने लगे। हाड़ी, बागदी, डोम, मोची, कुम्हार, मेटे, गड़ाई, भल्ला, रायबेंसे सब उनका कीर्तन सुनने आये।

चंडीदास ने सभी से कहा—तुम में से कोई छोटा नहीं। महापुरुष चैतन्य का धर्म है, 'जीवों के प्रति प्रेम'। उन्होंने कहा है कि उसी के द्वारा ईश्वर की सेवा हो सकती है।

चंडीदास भी अपना सारा जीवन अपनी पदावली के माध्यम से इसी सहज सत्य को उजागर करना चाहते थे—

सबार उपरे मानुष सत्य, ताहार उपरे नाई।
(सबसे ऊपर मनुष्य, उसके ऊपर कोई नही)

कबीर



आज से लगभग साढ़े पाँच सौ वर्ष पहले की बात है, काशी के पास लहरतारा नामक स्थान पर नीरू और नीमा नाम के एक जुलाहे दंपत्ती को एक बच्चा पड़ा मिला। बच्चा बड़ा प्यारा था। मुँह में मुट्ठी डाले चपर-चपर चूस रहा था, और चारों ओर टुकुर-टुकुर ताक रहा था। उसे सुनसान स्थान पर अकेला पड़ा देख नीमा का दिल वात्सल्य से भर उठा। वह बच्चे को अपने साथ घर ले जाना चाहती थी। नीरू को भी उसने राजी कर लिया। वे बच्चे को अपने साथ ले गये।

घर पहुँच कर नीरू ने बालक का विधिवत नामकरण करना चाहा। चटपट काजी बुलाये गये। उन्होंने कुरान खोलकर देखा तो बालक के नाम अकबर, कुब्रा, आदि निकले जिनका अर्थ है महान या परमात्मा। काज़ी असमंजस में पड़ गये। एक साधारण गरीब जुलाहे के बालक का ऐसा नाम ? खैर, बालक का नाम कबीर पड़ गया।

गरीब जुलाहे का वह दत्तक पुत्र आगे चलकर महान संत और समाज सुधारक बना।

कबीर असाधारण व्यक्ति थे, उनके जन्म को कहानियाँ भी असाधारण हैं। उनके असली माता-पिता का अभी तक पता नहीं चल पाया है। उनके जन्म को लेकर अनेक किंवदंतियाँ प्रचलित हैं।

एक कहानी यह है कि एक दिन एक ब्राह्मण अपनी विधवा पुत्री के साथ स्वामी रामानंद के दर्शनों के लिये गया। लड़की ने जब उनके चरण छूकर उन्हें प्रणाम किया तो उनके मुँह से निकला,"पुत्रवती भव।" ब्राह्मण ने दुखी होकर कहा, "यह कैसा आशीर्वाद दिया आपने, महाराज ? मेरी पुत्री तो विधवा है।"

स्वामी जी पहले तो सोच में पड़ गये, फिर बोले, "मेरा आशीर्वाद मिथ्या नहीं हो सकता। इसका पुत्र एक महान संत होगा।"

कहते हैं कि इस घटना के बाद ही लड़की के हाथ में एक फफोला निकला। कुछ समय बाद वह फूटा तो उसमें से एक जीव निकला जिसने धरती पर गिरते ही मानव रूप धारण कर लिया। बालक का नाम 'करवीर', अर्थात हाथ से पैदा हुआ वीर, पड गया। कबीर के जन्म को

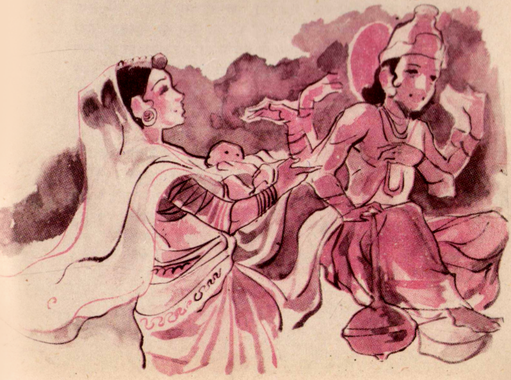
दैवी घटना बताने वाली और भी कई कहानियां मिलती हैं।

जुलाहा परिवार में पलने के बावजूद कबीर राम, गोविन्द और हर का नाम जपा करते थे। इस कारण हिंदू और मुसलमान दोनों ही उनसे नाराज थे। मुसलमान इसलिए नाराज थे कि वह हिंदू देवताओं का नाम लेते थे, और हिंदू इसलिए कि वह मूर्तिपूजा, अंधविश्वास, जाति-भेद आदि का विरोध करते थे। इसके अलावा हिंदुओं को यह आपत्ति भी थी कि कबीर मुसलमान होकर वैष्णवों की तरह रहते हैं। लोग उनसे पूछते कि आपका गुरु कौन है। विश्वास यह था कि वैष्णव का कोई गुरु न हो तो उसे मुक्ति नहीं मिल सकती।

उस समय काशी में स्वामी रामानंद की बड़ी प्रसिद्धि थी। दूर-दूर से लोग उनसे उपदेश ग्रहण करने आया करते थे। कबीर ने उन्हीं से दीक्षा लेने का निश्चय कर लिया।



स्वामी जी रोज मुँह-अंधेरे गंगा स्नान के लिए जाया करते थे। एक दिन स्वामी जी गंगा तट की ओर जा रहे थे कि उनके पैर किसी से छू गये। यह कबीर थे जो गुरु की प्रतीक्षा में बैठे थे। स्वामी जी के मुँह से निकला, 'राम-राम।' बस, कबीर ने उसे ही गुरुमंत्र मान लिया और सबको बताने लगे कि उन्होंने रामानंद से दीक्षा ली है। नीरू और नीमा परेशान थे कि कबीर ने मुसलमानों का रहन-सहन छोड़कर तिलक लगाना और कंठी माला पहनना शुरू कर दिया है। उधर हिंदुओं ने भी बड़ा शोर मचाया कि रामानंद ने एक मुसलमान को कैसे दीक्षा दे दी। स्वामी जी तक बात पहुँची तो उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। कहने लगे, मैंने तो किसी भी मुसलमान को गुरुमंत्र नहीं दिया। उन्होंने कबीर को बुलाकर पूछा तो उन्होंने गंगा तटवाली उस दिन की घटना कह सुनायी। स्वामी बहुत प्रसन्न हुए और उन्हें अपना शिष्य स्वीकार कर लिया।



कबीर की बुद्धि असाधारण थी। उनके गुरु भी उनके आगे हार मान जाते थे। एक बार रामानंद के आश्रम में पितरों का श्राद्ध था। पितरों के श्राद्ध के दिन उनके पसंद की चीजें बनायी जाती हैं। रामानंद के पितरों को गाय का दूध पसंद था। इसलिए रामानंद ने कबीर से गाय का दूध लाने के लिए कहा। कबीर बर्तन लेकर दूध लाने चले। रास्ते में एक जगह एक गाय मरी पड़ी थी। कबीर ने गाय के आगे घास डाली और वहीं बर्तन लेकर खड़े रहे। बड़ी देर हो गयी, श्राद्ध की सारी तैयारी हो चुकी, पर कबीर का कहीं पता नहीं था। वे अभी तक लौटे नहीं थे। इसलिए रामानंद उन्हें ढूँढने निकले। कबीर को मरी हुई गाय के पास खड़ा देख रामानंद ने कहा, "अरे, यहाँ खड़े क्या कर रहे हो?" कबीर ने जवाब दिया, 'गुरु महाराज, गाय न दूध दे रही है और न चारा ही खा रही है।" रामानंद ने हंसकर कहा, "अरे पगले, यह गाय तो मरी हुई है। चारा कैसे खायेगी?" तब कबीर ने कहा, "महाराज अभी-अभी मरी हुई गाय अगर घास नहीं खा सकती तो बरसों पहले मरे हुए आपके पुरखे दूध कैसे पियेंगे?" रामानंद निरुत्तर हो गये।

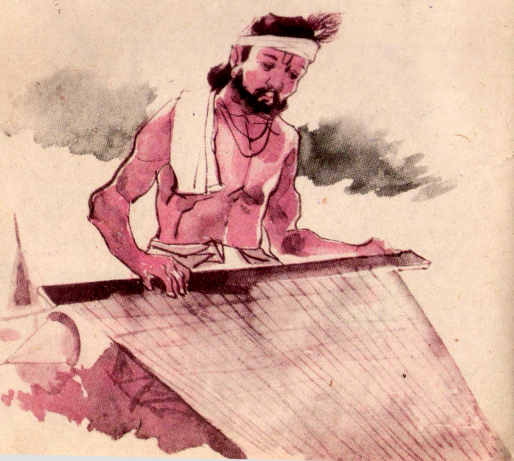
कबीर घर गृहस्थी वाले संत थे। अपना काम वे पूरा मन लगा कर करते थे। मनुष्य को अपने कर्त्तव्य को ही प्रभु का पूजन मानना चाहिए, यही सच्चा धर्म है। मनुष्य के कर्तव्य का फूल भगवान को अन्य किसी भी सुगंधित और कीमती फूलों से अधिक प्यारा है। कपड़े बुनने में कबीर इतने तन्मय हो जाते थे कि उसी में उन्हें भगवान का संगीत सुनायी देता था। उनके पदों में भी जुलाहों के काम से संबंधित अनेक उपमाएँ पायी जाती हैं।

अपना धंधा करते हुए कबीर परोपकार में अपना जीवन बिता रहे थे। कपड़े बुनना और फिर बाजार में ले जाकर उन्हें बेच आना। मुनाफे की ओर उनका जरा भी ध्यान नहीं था। कबीर का दिल ममता से, करुणा से भरा था। एक बार एक ब्राह्मण बाजार में आकर दुख भरे स्वरों में उनसे बोला, "मैं गरीब हूँ, मेरी झोली खाली है। तन ढकने के लिए मुझे कपड़ा दीजिए।" दयावान कबीर ने उसे कपड़े का आधा थान दे दिया।



पर कई भिखारी बड़े लालची होते हैं। वह ब्राह्मण भी वैसा था। आधे थान से उसको तसल्ली नहीं हुई। उसने और कपड़ा माँगा। कबीर ने अपने पास का सारा कपड़ा उसे दे डाला। वह ब्राह्मण दुआएँ देता हुआ चला गया।

पर अब कबीर के सामने समस्या खड़ी हो गयी कि घर जाकर खाने के लिए पैसे कहाँ से दूंगा। वे उदास होकर बाजार में एक तरफ बैठ गये। तीन दिन बीत गये। घर के लोग भूखे रहे, क्योंकि कबीर के पास जमा-पूंजी तो थी नहीं। बाजार में कपड़ा बेचकर जब कुछ पैसे आते उनसे खाने-पीने का सामान खरीदा जाता और खाना बनता। नीमा खाना कैसे बनाती ? बेचारी भूखी-प्यासी कबीर का इंतजार करती रही। कहते हैं



कि उसी समय एक व्यक्ति खाने-पीने का ढेर सारा सामान बैल पर लादकर ले आया और कहने लगा, यह सामान आपके बेटे ने भेजा है। पर माँ को पता था कि उसका बेटा व्यर्थ में किसी का एहसान कभी नहीं लेगा। उसने सामान लेने से इन्कार कर दिया तो उस व्यक्ति ने कहा, "काशी विश्वेश्वर के दर्शन के लिए एक राजा आया था। उसने प्रसन्न होकर यह सामान भेजा है।" बाद में कबीर घर आये और उन्हें सारी बात का पता चला। वे समझ गये कि उनकी सहायता के लिए स्वयं भगवान आये थे। उनका भक्तिभाव और भी दृढ़ हो गया।

कबीर की पत्नी का नाम था लोई। कुछ लोगों का अनुमान है कि वह उनकी शिष्या थी। वह एक कुटिया में रहती थी। एक दिन दो साधु और कबीर उसके घर गये। उसने तीनों का स्वागत किया और दूध से भरे कटोरे उनके सामने रखे। दोनों साधुओं ने दूध पी लिया पर कबीर ने कहा, "मैं दूध नहीं पीऊँगा। अभी यहाँ पर एक तपस्वी आने वाला है। वह भूखा है। मुझसे अधिक उसे दूध की जरूरत है।" थोड़ी ही देर में सचमुच एक तपस्वी वहाँ आ पहुँचा। वह बहुत भूखा दिखायी दे रहा था। कबीर ने अपना दूध का कटोरा उसे दे दिया। उसने वह कटोरा मुँह से लगाया और पलभर में खाली कर दिया। प्रसन्न होकर उसने कबीर को आशीर्वाद दिया। यह चमत्कार देखकर लोई को बड़ा अचंभा हुआ। कबीर का दयाभाव और दिव्य दृष्टि वह जान गयी। वह कबीर के पीछे-पीछे चल पड़ी और उनके साथ रहकर, उनकी सेवा करके, उसने अपना जीवन सफल किया।

कबीर बहुत प्रतिभाशाली कवि थे। अपने पदों, दोहों और साखियों के द्वारा उन्होंने लोगों को अपने विचार समझाये। उन्होंने बताया कि सच्चा धर्म क्या है। कर्मकांड उन्हें पसंद न था। उन्होंने बड़े आत्म-विश्वास से कहा कि उन्होंने तो प्रभु को प्रेम से जीत लिया है।

कबीर सिर्फ मानव धर्म मानते थे। जाति-भेद और दिखावे से, झूठे पूजा-पाठ से उन्हें सख्त नफरत थी। हिंदू और मुसलमान दोनों धर्मों के कट्टर लोग उनसे बिगड़ गये थे। किंतु आम जनता उनसे खुश थी।

हजारों लोग कबीर के दर्शन के लिए आते थे।

कबीर की बढ़ती हुई कीर्ति, उनके खरे बोल, उनकी वैराग्य भावना इन कारणों से धर्म-सत्ता और राज-सत्ता दोनों उनसे नाराज हो गयी। ब्राह्मण और मुल्ला दोनों उनके खिलाफ सरकार के पास शिकायतें लेकर जाने लगे। उस समय का सुलतान सिकंदर लोदी धर्म के मामले में बहुत कट्टर था। प्रस्थापित धर्म की, धर्म के ठेकेदार पुजारियों की कबीर इज्जत नहीं करते यह सुनकर वह चिढ़ गया। उसे बहुत भड़काया गया था। भक्त प्रह्लाद की तरह कबीर को भी अनेक परीक्षाओं से गुजरना पड़ा।



पर हरे एक बार भगवान की कृपा से वे बच गये। यातनाओं की अग्नि में तपकर वह और भी खरे हो गये। चारों ओर उनकी जय-जयकार होने लगी।

हिंदुओं को विश्वास था कि काशी में प्राण त्यागने वाला व्यक्ति सीधे स्वर्ग जाता है। इसी प्रकार मगहर के बारे में कहा जाता था कि वहां मरने वाला अगले जन्म में गधा होगा। इस अंधविश्वास को दूर करने के लिए कबीर ने मगहर में ही समाधि लेने का संकल्प किया। सैकड़ों भक्त वहाँ एकत्रित हो गये। आखिर स्वर्गारोहण की घड़ी निकट आ गयी।



कबीर ने एक कुटिया में प्रवेश किया, और दरवाजा बंद कर लिया। थोड़ी देर बाद एक ज्योति कुटिया से निकली। कबीर परमात्मा में विलीन हो गये।

अब झगड़े की बात खड़ी हुई। हिंदू कहने लगे कि हम कबीर का दाह संस्कार करेंगे। मुसलमान भक्त कहने लगे कि हम कबीर को दफन करके मजार बनायेंगे। हाथापाई तक की नौबत आ गयी। कहते हैं कि उसी समय आकाशवाणी हुई "झगड़ा मत करो। कुटिया खोलकर तो देखो।" लोगों ने कुटिया खोलकर देखा तो एक चादर के नीचे गुलाब के फूलों का ढेर था। हिंदू और मुसलमानों ने फूल आपस में बाँट लिये। अपनी-अपनी पद्धति के अनुसार स्मारक बनवाये। वे फूल तो उसी वक्त सूख गये, पर कबीर के पदों की ताजगी और सुगंध अनश्वर है।

पर्ल आफसेट प्रेस प्रा० लि०, नई दिल्ली द्वारा मुद्रित

रु० 6.00

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

